

## आदिवासी अस्मिता और इधर का उपन्यास साहित्य

डॉ. संध्या गंगराड़े

प्राध्यापक (हिन्दी)

शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नात. कन्या महाविद्यालय

इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

### शोध संक्षेप

“आदिवासियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी जरूरतें सबसे कम हैं, वे प्रकृति और पर्यावरण का कम से कम नुकसान करते हैं।”<sup>1</sup> उदय प्रकाश

किसी को नुकसान न पहुँचाने वाले सीमित साधनों में गुजर-बसर करने वाले अपनी धरती और संस्कृति में मगन इन आदिवासियों का निरन्तर शोषण हो रहा है, उन्हें उनकी जमीन से बार-बार बेदखल किया जा रहा है; यूरेनियम के लिए, तांबे के लिए, लोहे के लिए, बाक्साइट के लिए, जंगल की जमीन के लिए, बड़े-बड़े बाँधों के लिए उन्हें बार-बार बेदखल किया जाता रहा है, किया जा रहा है। इधर के उपन्यास साहित्य में आदिवासियों की इस बेदखली को जंगलों से उनके निष्कासन को उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं को, और उन पर हो रहे अत्याचारों को उपन्यासकारों ने भरपूर संवेदनात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है।

‘ग्लोबल गाँव के देवता या बहुराष्ट्रीय कंपनी’ ग्लोबलाइजेशन या भूमण्डलीकरण ने आदिवासी अंचलों के निवासियों को उनके जल, जंगल और जमीन से निष्कासित कर दिया है। अब उनके देवता ‘असुर’ नहीं अब वहाँ के देवता हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ। उपन्यासकार रणेन्द्र ने असुर जनजाति की इसी व्यथा को कथा में शोधपूर्ण तरीके से बुना है। असुर जनजाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उनके संबन्ध में प्रचलित मान्यताओं और उनके मिथक में बदलने की प्रक्रिया को उपन्यासकार ने ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास में अभिव्यक्त किया है।

‘असुर’ जो ‘सुर’ (देवता) नहीं यानि राक्षस दानव ऐसी ही धारणा प्रचलित है “दस-बारह फीट लम्बे दाँत-वाँत बाहर। हाथों में तरह-तरह के हथियार नरभक्षी, शिवभक्त- शक्तिशाली। किन्तु अंत में मारे जाने वाले। सारे देवासुर संग्रामों का लास्ट

सीन पहले से फिक्स्ड।”<sup>2</sup> यद्यपि इन असुरों का उल्लेख ऋग्वेद से होता आया है। उपन्यास के एक असुर पात्र रूमझुम ने स्पष्ट किया है - “हम वैदिक काल के सप्तसिन्धु के इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ़, शिकोहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते इस नव प्रान्तर कीकट; पौंड्रिक कोकराह या चुटिया नागपुर पहुँचे। हजार सालों में कितने इन्द्रों, कितने पाण्डवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किये, उसकी गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोक कथाओं और मिथकों में हम जिन्दा है।”<sup>3</sup> और अब वैश्विक पूँजीवाद के पंजे उनके बचे-खुचे अस्तित्व को भी समेट रहा है। असुरों की धरती के नीचे दबा है बाक्साइट। इस बाक्साइट के लिए उन्हें उनकी बस्तियों के बाहर किया जा रहा है, उनके घर उजाड़े जा रहे हैं। इन असुरों का जीवन बड़ कष्टमय है।

मजदूरी मिलती नहीं, फसलें इतनी होती नहीं कि उसके भरोसे साल निकल जाएँ, ऊपर से बाक्साइट के लिए खोदे गये गड्डे “एक तरफ इन खानों ने मजूरी दी दूसरी तरफ बरबादी के सरंजाम भी खड़े किए। पिछले पच्चीस-तीस सालों में खान-मालिकों ने बड़े-बड़े गड्डे छोड़े हैं, बरसात में इन गड्डों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं।” सेरेबल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी।”<sup>4</sup> एग्रीमेंट की पहली शर्त जब यह है कि गड्डा भरना है तो फिर उसे भरा क्यों नहीं जाता? इस सबके बावजूद उपन्यासकार ने इन असुरों को संघर्षरत दिखाया है। ये जान गए हैं कि उनकी जमीन से उन्हें उजाड़ने वाले कौन हैं। उनकी पीड़ा इतनी ही नहीं है उनके स्कूलों की सुविधाएँ संपन्न लोगों के स्कूलों को दी जा रही हैं। असुरों के सौ से ज्यादा घर उजाड़ कर पाथरपाट का स्कूल बनाया गया है, “अरे मास्टर साहब! क्या तो आदिवासियों का आवासीय स्कूल। पहले जाकर पाथरपाट का जगप्रसिद्ध स्कूल देख आए। तब समझ में आएगा कि असल स्कूल क्या होता है और फुसलावन स्कूल क्या होता है।”<sup>5</sup> यही नहीं विडम्बना तो यह है कि जहाँ से बाक्साइट निकाला जाता उन्हें गड्डे मिलते हैं और वहाँ से डेढ़ दो सौ किलोमीटर दूर जहाँ प्रोसेस होकर यह बाक्साइट अल्युमिनियम में ढलता है वह जगह सिल्वर सिटी आव इण्डिया कहलाती है।”<sup>6</sup> उपन्यासकार ने आदिवासियों के शोषण और निष्कासन उनकी संस्कृति और धरोहरों के विनाश के वैश्विक परिदृश्य पर चिन्ता व्यक्त की है। आदिवासियों के साथ मिलकर बाहरी तत्वों से जो भी संघर्ष कर रहा है, निजीकरण के खिलाफ वेदांग जैसी विदेशी कंपनी जो देशी नाम से लूट रही है के विरोध में जो भी खड़ा है उन्हें विभिन्न तरीकों से परेशान किया

जा रहा है। उन्हें नक्सली बता कर उन पर केस ठोका जाता है। छत्तीसगढ़ हो या मणीपुर के इम्फाल में इरोम शर्मिला हो या केरल की सी.के. जानू हो या महाराष्ट्र के कोंकण में आदिवासियों की लड़ाई लड़ती सुरेखा दलवी हो या रीवा जिले की दुवसिया देवी हो या छिन्दवाड़ा गोंड की दयाबाई।”<sup>7</sup> सबके विरुद्ध जनतंत्र के अगुआ खड़े हैं।

‘मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ या धरती में बोया विष बीज’

अह! धरती कितना देती! हरे भरे जंगल, वन प्रांतर, कल-कल बहती नदियाँ, पर्वत, फूल, फल, अन्न, वस्त्र बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ और इसी धरती की कोख में है बाक्साइट, यूरेनियम, लोहा, कोयला, तांबा और बहुत कुछ। इसके अंदर छुपे इसी खजाने को लूटने वाले बाहर से आते हैं और जो यहाँ के मूल निवासी हैं, जो थोड़े में संतुष्ट होते हैं, इस प्रकृति को ही देवता मान इसको पूजते हैं, वे तो यह भी नहीं जानते कि इसके अंदर छुपी खनिज संपदा ही उन्हें उनकी धरती से दूर कर रही है। ये भोले लोग अपनी परम्पराओं, रीति-रिवाजों में मगन है, खुश हैं और बाहरी लोग उनसे उनकी धरती बड़ी चालाकी से छीन लेते हैं और जब तक उन्हें पता चलता है तब तक बहुत देर हो चुकी रहती है।

‘हो’ जनजाति की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ धरती के अंदर छुपी खनिज संपदा के दोहन से उपजे और उनके जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का शोधपूर्ण चित्रण है महुआ माझी के उपन्यास ‘मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ’ में। सारंडा का घना जंगल जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है और ‘हो’ आदिवासियों की उसके प्रति आस्था उसके प्रति पूज्य भाव। इसी के कुछ दूर पर ही है मरंगगोड़ा (मूलतः जादूगोड़ा) जो

नीलकण्ठ हो गया; उसकी हरी-भरी धरती, गगन चुम्बी वृक्ष, नदियाँ सभी यूरेनियम के कारण प्रदूषित हो गये हैं “यूरेनियम खदानों ने हमारी बहुमूल्य संपत्ति छीन ली हमसे। अब हमारे पास खोने के लिए कुछ नहीं बचा है। हम आदिवासियों के पास तो संपत्ति के नाम पर होती है शुद्ध हवा, हरे-भरे स्वस्थ पेड़, स्वच्छ पानी, जंगलों से ढंके पहाड़, पंछी, जानवर, जंगली फूल फलों के पेड़.....। अब सब खत्म हो रहा है। इनके साथ-साथ हमारी संस्कृति भी नष्ट हो रही है।”<sup>8</sup>

यूरेनियम की खदानें मरंगगोड़ा की धरती के लिए विनाश का कारण बन गयीं। ये धरती, ये जंगल आदिवासियों के घर हैं, परन्तु इस पर सरकारी तन्त्र का, वन विभाग का अधिकार हो गया है। आदिवासियों की रोजी-रोटी छिन गई है “जंगल के बिना हम जिंंगे कैसे ? हमारी झोपड़ी, खटिया बनाने की लकड़ी और रस्सी जंगल से आती है। साल पत्ते में हम और हमारे बोंगा, हमारे देसाउलि डियंग पीते हैं, खाना खाते हैं। जब धान नहीं होता तब जंगली फल, मूल, कंद आदि खाकर ही तो हम पेट भरते हैं। उनके साथ-साथ लाह, तसर, गुटि, करंज के बीज, दोना पत्तल आदि बेचकर चावल, नमक इत्यादि खरीद लाते हैं। साल की लकड़ी और पत्तों के बिना शादी ब्याह से लेकर जन्म-मृत्यु तक का कोई भी संस्कार संभव है क्या ?”<sup>9</sup>

मरंगगोड़ा नीलकण्ठ क्यों हुआ ? विकिरण और प्रदूषण के कारण। उपन्यास में लेखिका ने ‘हो’ जनजाति और मरंगगोड़ा का यथार्थ चित्रण किया है। उनके अतीत को वर्तमान से जोड़ते हुए उपन्यास का आरंभ इन शब्दों से किया है “ये उन दिनों का की बात है जब मरंग गोड़ा में सभी के हाथ पाँव बिल्कुल सही सलामत थे। किसी का सिर असामान्य रूप से बड़ा या छोटा नहीं दिखता

था। किसी की घिनौने घावों से बजबजाती नहीं थी। केंदु फल के बीज न तो टेढ़े हुआ करते थे और न ही गायब। गाय बकरियों के जबड़े, दाँत या मसूड़े सड़ गल कर गिरते नहीं थे। आसन्न तूफान या बारिश की जानकारी देने के लिए लिपि जैसे लाल मटमैले पंछी गाँव, जंगल टोला में हर वक्त मोतायेन रहते। लोग भक्ति श्रद्धा से बिरबोंगा (जंगल देवता), बुरू बोंगा (पहाड़ देवता) की पूजा किया करते।”<sup>10</sup> अज्ञानता के चलते आदिवासी जान ही नहीं पाते हैं कि उनके साथ जो घटनाएं हो रही हैं; जो बिमारियाँ हो रही हैं वे विकास की अंधाधुंध दौड़ के कारण, विदेशी कंपनियों के अधिक से अधिक लालच के कारण हो रही हैं। वे तो यही समझते हैं कि यह ईश्वरीय प्रकोप है या डायन जैसा कुछ है।

यूरेनियम की खदानों से निकलती पीली धूल मरंगगोड़ा के लोगों को बीमार कर रही है, परन्तु वे इससे अनजान खदानों में काम कर रहे हैं। खदानों से निकलने वाले गीले कचरे को डैम में डालने से कचरा सूखकर मैदान में परिवर्तित हो गया। इस पर खेलने से वहाँ अनेक रोग फैल रहे हैं। गर्भपात, विचित्र बच्चों का जन्म आदि के लिए ये अनपढ़ आदिवासी डायन का प्रकोप बताते हैं और निर्दोषों को परेशान करते हैं। इसी विकिरण के और प्रदूषण के खतरे को लेखिका वैश्विक स्तर पर बताते हुए लिखती है एवं हिरोशिमा और नागासाकी पर हुए परमाणु हमले की भयावहता को देखती है “विकिरण जीवित प्राणी के जीन के साथ छेड़छाड़ करता ही है। यह स्त्री-पुरुष की जनन क्षमता को भी प्रभावित करके उन्हें बाँझ बना देने की ताकत रखता है।”<sup>11</sup> आदिवासियों के जंगल और जमीन उनसे छीने जाते हैं और मुआवजा मिलता तो है परन्तु जो नुकसान हो जाता है उसकी भरपाई नहीं होती



“भले ही मुआवजा देकर कंपनी ने कुछ लोगों का भला किया हो पर इसके कारण हमारा वातावरण तो प्रदूषित होता ही रहेगा न! हमारी आने वाली पीढ़ियाँ बीमार होती ही रहेंगी न! हमारी विकलांगता, हमारी असामयिक मौत देख वैसे भी हमारे पुरखों की आत्म रो रही होगी। कंपनी चाहे कितना भी मुआवजा क्यों न दे दे बीमारों के इलाज की व्यवस्था कर दे मगर हमारे स्वास्थ्य, हमारी स्वच्छ हवा को, जो हम गरीबों की एकमात्र पूँजी थी; को तो वापस नहीं ला सकती है न! जब हम तमाम मुसीबतों की जड़ ये खदानें, ये मिलें हैं तो क्यों न इन्हें ही बंद करने की मांग करें। जहरीले सांप को उसके बिल में रहने देना ही बुद्धिमानी है। बाहर लाना नहीं।”<sup>12</sup>

‘गायब होता देश’ या ‘शिकारियों ने जो तोड़ा’ रणेन्द्र ने जनजातीय जीवन और संस्कृति और उनके निर्वासन विस्थापन की पीड़ा ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में पूरी संवेदनशीलता से कही। वहाँ है असुर जनजाति का संघर्ष और विदेशी कंपनियों द्वारा किया जाने वाला शोषण। उन्हीं का दूसरा उपन्यास है ‘गायब होता देश’। इसमें है मुण्डा जनजाति की संस्कृति, उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उनकी वैज्ञानिक दृष्टि, प्रकृति के प्रति उनका अनुराग, आस्था और पूज्य भाव, और उनको उनके मूल से विच्छिन्न करने वाले हैं देशी और विदेशी लुटेरे। ये लुटेरे छल से, बल से, छद्म से उनसे उनकी पहचान, उनकी जीवन धारा से उन्हें काट रहे हैं। इनकी लूट जादूगर-सी है। ये पूँजीपति, रियल एस्टेट के माफिया, पत्रकार जादू से देखते-देखते सब गायब कर देते हैं। सोने जैसा मुंडाओ का देश भी इसी तरह गायब होता जा रहा है - “सरना वनस्पति जगत गायब हुआ मरांग - बुरु बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक

बिखरने वाली, हीरों से भरी नदियाँ जिनमें इकिर बोंगा - जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुण्डाओ के बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसुम (सोना जैसा देश) गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।”<sup>13</sup> उपन्यासकार ने जादुई यथार्थवादी शैली में मुंडाओ की अतीत गाथा और उनकी परम्पराओं को शोध दृष्टि के साथ ‘गायब होता देश’ में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने मेगाथिल-ससनादिरि-विद्धिरि आदि के वैज्ञानिक, पारंपरिक और आध्यात्मिक आधार बताते हुए लेमुरिया महाद्वीप के समुद्र में डूबने की कथा के माध्यम से मुंडाओं की समृद्ध परंपरा का चित्रण किया है। माना जाता है कि मुंडा जनजाति इसी महाद्वीप से होते हुए भारत पहुँची। उपन्यासकार ने यह भी बताया कि झारखण्ड का वह भू-भाग जहाँ मुण्डा निवास करते हैं वह भी ऊर्जा का केन्द्र माना जाता है “हमारे पूर्वजों ने धरती के ऊर्जा केन्द्रों और वनस्पतियों के ऊर्जा प्रवाह के बीच संबंध खोजा था। उन्हें जोड़ा आखिर क्यों गिरिडीह के पार्श्वनाथ की पहाड़ी पर ही जैनियों के बीस तीर्थकरों ने आकर समाधि ली। सच यह है कि उन्हें इस ऊर्जा स्थल के बारे में पता था। जापान का माउंट कुरामा ऐसा ही ऊर्जा केन्द्र है।”<sup>14</sup> ऐसी धरती, वनस्पति और ऊर्जा केन्द्रों को नष्ट किया जा रहा है और वहाँ के निवासियों को बाँध के बहाने, कभी विकास के बहाने उन्हें उनकी जमीनों से बेदखल किया जा रहा है। इनमें रियल एस्टेट के व्यापारी सबसे आगे हैं। मुआवजा तो मिलता है परन्तु काम नहीं मिलता यदि आदिवासी विरोध करते हैं तो नक्सली बता कर मार दिया जाता है। यहाँ लूट में सब शामिल हैं; पुलिस, प्रशासन, मीडिया, विधायक “जो भी बाहर से यहाँ आया बहुत बड़ा पेट लेकर आया और ऐसी

राकसी भूख जो कभी नही खत्म होने वाली। बाहर से जो भी आया सबको जमीन की भूख। पैसे की भूख। ताकत की भूख। औरत की भूख। एक हो तो बताया जाए।”<sup>15</sup> इस भूख ने मूल निवासियों को, मुंडाओं को अपनी धरती, अपनी संस्कृति से, अपनी परंपराओं, अपनी जड़ों से बेदखल करने का प्रयास भी जारी है तो उनका संघर्ष भी निरन्तर है। बिरसा मुंडा से लेकर निरंतर संघर्ष है; अंग्रेजों से संघर्ष, देशी अंग्रेजों से संघर्ष, अपनो से संघर्ष और लुटेरों से संघर्ष। ‘जंगल जहाँ शुरु होता है’ वहाँ जनतंत्र बिदा होता है

‘हमरा तो हर तरीका से मौवत लिखल बा ..... जमींदार से, डाकू से, देव-पितर से, भूत-भवानी से, पुलिस-लेखापाल से.....।”<sup>16</sup> यह है पश्चिमी चम्पारण के एक थारू की पीड़ा। हर तरह से शोषित जो अपने आप को राजपूतों के वंशज का मानती है। एक मिथ है “काफी पहले मुगलों ने राजपूतानों पर हमला किया था तो रानियाँ, कहिए राजपूतानियाँ अपनी इज्जत बचाने की खातिर अपने नौकरों के साथ भाग आई वहाँ। राजपूत जब वर्षों तक नहीं आ पाए तो औरतों ने अपने नौकरों से ही संबन्ध जोड़ लिये। .....तब से बहुत वर्षों तक औरतें रानी के ठसके में बनी रहीं, मर्द गुलामी के पट्टे में। मगर आज वैसा कुछ भी नहीं है - हम थारू वैसी ही कंगाल की जिंदगी जी रहे हैं - औरत भी, मर्द भी।”<sup>17</sup> इस थारू बहुल क्षेत्र में समस्या है डाकू समस्या। डाकूओं के लिए जंगल अभयारण्य है और अभयारण्य है थारू जनजाति के लोग भी। डाकू इनके पैरासाइट है। परन्तु एक साधारण जीवन जीने को मोहताज। डाकू, पुलिस, मालिकार, चौतरफा शोषण के शिकार हैं ये थारू। खेत बंधक

है, ठेकेदार मजदूरी का पैसा नहीं देता, जंगल में बेंत, हाथ में हुनर परन्तु जंगल से बेंत नहीं ला सकते, “बेंत का ठेकेदार एक जल्लाद दूसरे जल्लाद वन-विभाग वाले। कहाँ से आए रकम घूस पाती के लिए।”<sup>18</sup> इस शोषण के बावजूद इनमें एक अजीब सा ठण्डापन है, न आक्रोश, न क्रोध बस दबते रहना, डरते रहना, सहते रहना। उनकी स्त्रियों के साथ मनचाहा व्यवहार साधारण बात है। उनके यौन शोषण के खिलाफ कोई आवाज नहीं। शायद इसीलिए कि ये थारू क्रोधी स्वभाव के नहीं होते। “शारीरिक रूप से भी लंबे-तगड़े नहीं होते। क्षमा, दया, मृदुभाषी, निर्मल चित्त के सहज-सरल, आक्रोश विहीन लोग - उनकी प्रवृत्ति को गुण कहा जाए या अवगुण ?”<sup>19</sup> इन्हीं थारूओं में काली डाकू बन जाता है; अपने भाई, भाभी, भतीजी, पत्नी के प्रति अन्याय से दुखी होकर, परेशान होकर। यह उसकी भी मूल प्रवृत्ति नहीं है परन्तु चौतरफा हमलों ने उसे यही एक रास्ता दिखलाई देता है और सब कुछ खोकर वह क्या पाता है ? “हम तो डाकू हँई - मुहर लागल बा हमरा पे, लौटि जायम ..... बाकी फिरौती चाहीं साहिब फिरौती। दे सकब? हमरा भाई, भौजाई, भतीजी, मेहरारू, बहिन, गाड़, भैंस, खेत-खेतार, घर, उमिर (उम्र) चस्तिर (चरित्र) समउ (समय) ... दे देई साहब, लौट जायम।।”<sup>20</sup> इस मिनी चंबल में पश्चिमी चम्पारण में थारूओं की पीड़ा असीम है, यहाँ खदाने नहीं, रियल एस्टेट के डाकू भी नहीं हैं, परन्तु यहाँ तो हर कोई पुलिस, वन-विभाग, मंत्री, डाकू, ठेकेदार, बेटी बेचने वाले, गांजा-भांग से लेकर हथियारों की स्मगलिंग तक, सब शोषण कर रहे हैं इन थारूओं का।

निष्कर्ष

अस्मिता का प्रश्न बड़ा है या विकास का मुद्दा ? क्या विकास के लिए संस्कृति, प्रकृति और



पर्यावरण का विनाश औचित्यपूर्ण है ? आदिवासी अस्मिता का आधार है, उनकी संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्पराएं, जंगल, नदियाँ, पहाड़ियाँ, खान-पान। यदि ये ही विनष्ट हो जाएंगे तो उनकी अस्मिता, उनकी पहचान खतरे में पड़ जाएगी और इसी खतरे से आगाह कर रहे हैं उपन्यासकार। प्रकृति और पर्यावरण तो प्रदूषित हो ही रहा है यहाँ निवासरत आदिवासियों का जीवन भी अत्यंत दूभर हो गया है। रणेन्द्र ने 'असुर' और 'मुण्डा' जनजाति, महुआ माझी ने 'हो' और संजीव ने 'थारू' जनजाति की पीड़ा को, शोषण को, संघर्ष को दृष्टा होकर भी भोक्ता की तरह स्वानुभूति के स्तर पर अभिव्यक्त किया है।

संदर्भित ग्रन्थ

1. पीली छतरी वाली लड़की, उदय प्रकाश, पृष्ठ 14
2. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 17
3. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 43
4. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 13
5. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 19
6. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 16
7. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेन्द्र, पृष्ठ 92
8. मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ, महुआ माझी, पृष्ठ 192
9. मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ, महुआ माझी, पृष्ठ 113
10. मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ, महुआ माझी, पृष्ठ 11
11. मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ, महुआ माझी, पृष्ठ 160
12. मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ, महुआ माझी, पृष्ठ 177
13. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृष्ठ 03
14. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृष्ठ 134
15. गायब होता देश, रणेन्द्र, पृष्ठ 104
16. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ 21
17. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ 137
18. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ 23
19. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ 280
20. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ 285